Vol.6 May 2013 No.11
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो
धर्ममूलम्

A Monthly publication of
Brahmasha India Vedic
Research Foundation

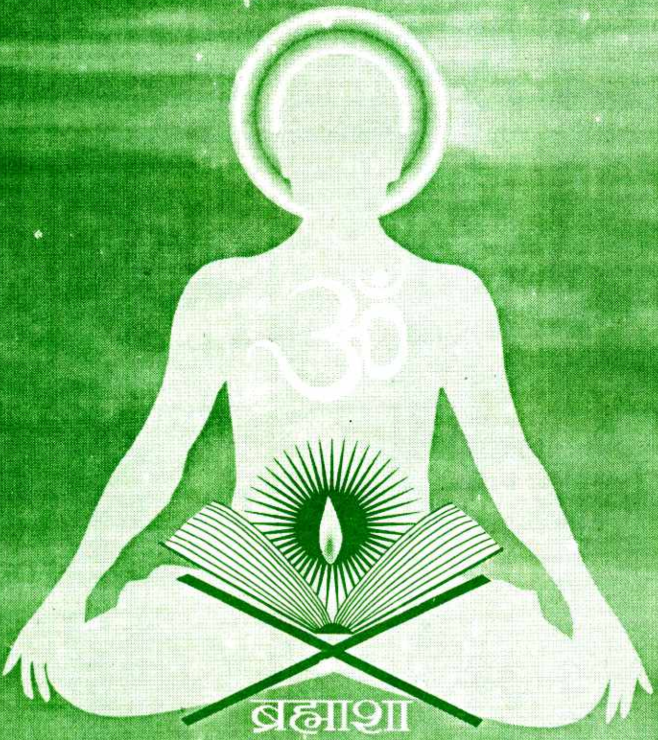

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

अहंकार मृत्यु है

–आचार्य भगवान देव "चैतन्य"

अहंकार ही है बोझ की गठड़ी
अहंकार हमें हल्का नहीं होने देता
जितना बड़ा होगा अहंकार का वृक्ष
उतने ही अधिक होंगे दुःखों के फल।

अहंकार मूलभूत भूल है
यह आनन्द का फूल प्रस्फुटित नहीं होने देता
यह कभी तृप्त नहीं होता
ज्यों–ज्यों कुछ पाता है
कुछ और भी बड़ा हो जाता है।

अहंकार की अन्तिम परिणति
मृत्यु है।
साधारण मृत्यु नहीं
आत्महत्या।

ये आत्महन्ता युगों–युगों तक
अपने ही अहंकार के वशीभूत
अन्धकार पूर्ण योनियों में भटकते हैं,
प्रकाश का आवरण है अहंकार।

समर्पण स्वयं अहंकार की मौत है,
हल्का, बिल्कुल हल्का होने का मूलमन्त्र
समर्पण बनाता है हमें–
विशाल......विराट......

समर्पण से व्यक्ति आत्मचेता बन जाता है।
पूर्ण प्रभु के प्रति समर्पण ही–
पूर्णता देता है।
समर्पण जड़ता तोड़,
गति देता है।

अहंकार क्षुद्रत्व है
समर्पण अमरत्व.......

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. अहंकार मृत्यु है 2
-आचार्य भगवान देव "चैतन्य"
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7
-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार
4. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की ऐतिहासिकता-2 8
-डॉ. सत्यपाल सिंह
5. किसी का दोष मत देखो 13
6. भारतीय धर्म एवं संस्कृति के विश्व प्रचारक : स्वामी विवेकानन्द
-डॉ. भवानीलाल भारतीय 14
7. इतिहास के झरोखे से 17
- श्री अश्विनी कुमार
8. शिवाजी जयन्ती 20
9. शरीर में स्वयं रोग-मुक्त होने की क्षमता होती है 22
- डॉ. चंचलमल चोरडिया
10. योग एक जीवन दर्शन 28
- स्वामी रामदेव
10. मानसिक अवसाद - डिप्रेशन की यज्ञ चिकित्सा 31
- वैद्य (डॉ.) कुलदीप सिंह सोहल
11. The Thinker and the Thought 33
-J. Krishnamurti
12. बिकने लगे हैं सांसद 35
-आचार्य रामसुफल शास्त्री

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta
V.President
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer
Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

संपादकीय

पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या

सृष्टि के आरंभ से मानव का प्रकृति से प्रत्यक्ष संपर्क रहा है। परमात्मा ने जहाँ मनुष्य को चक्षु, नासिका, कान, मुख और त्वचा दीं वहीं प्रकृति में अग्नि, वायु, आकाश, जल और पृथिवी को पैदा किया। इन तत्वों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। इन पाँच भूतों के बिना मानव जीवन संभव नहीं है। बिना वायु और जल के हम जीवित नहीं रह सकते। पृथ्वी हमें अन्न, फल, फूल, वनस्पतियाँ तथा विभिन्न प्रकार की औषधियाँ प्रदान करती है। इसके गर्भ से हमें खनिज, सोना, लोहा, रत्न आदि प्राप्त होते हैं। इनसे हम अनेक प्रकार के सामान बना सकते हैं जिनसे हमारा जीवन सुविधाजनक बनता है।

यदि हम प्रकृति द्वारा प्रदत्त साधनों का अपने स्वार्थ के लिए आवश्यकता से अधिक दोहन करेंगे तो हमारा पर्यावरण प्रदूषित होगा। आज विश्व में इसी कारण से स्थिति बहुत गंभीर बन गई है। हम प्रकृति के संसाधनों का इतना अधिक दोहन कर रहे हैं कि मानव और अन्य प्राणियों का जीवन संकट में पड़ गया है।

वायु प्रदूषण : हमारे जीवन के लिए सबसे अधिक आवश्यकता वायु की है जिसके बिना हम थोड़ी देर भी जीवित नहीं रह सकते। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 13.5 कि.ग्रा. शुद्ध वायु की आवश्यकता होती है। हम श्वास द्वारा जो हवा फेफड़ों में ले जाते हैं। उससे रक्त को आक्सीजन (प्राणवायु) मिलती है जिससे शुद्ध रक्त का संचार शरीर में होता है। हम श्वास द्वारा जिस कार्बन डाइऑक्साईड गैस को छोड़ते हैं। प्रकृति के पेड़–पौधे उन्हें पुनः हमारे लिए शुद्ध कर देते हैं। आज हम मल–मूत्र, गाड़ियों में डीजल–पेट्रोल के उत्सर्जन, कल–कारखानों

से उठने वाले धुएँ तथा पेड़ों के पत्तों, कूड़ा-कबाड़ आदि को जलाकर वायु और जल को प्रदुषित कर रहे हैं। विज्ञान के पास इस वायु को शुद्ध करने की कोई विधि नहीं है, परन्तु वेदों में इस दूषित वायु को शुद्ध करने के लिए यज्ञ का विधान है। यज्ञों के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि और पुष्टि होती है।

जल प्रदूषण : संस्कृत में जल को जीवन कहा है। जल के बिना भी जीवन संभव नहीं है। आज प्रकृति द्वारा प्रदत्त शुद्ध-स्वच्छ जल को हम इतना प्रदूषित कर देते हैं कि वह पीने के योग्य नहीं रहता। भारत की प्रसिद्ध गंगा-यमुना नदियों का विशेष महत्व है परन्तु हमारे शहरों से सीवर की गंदगी, कल-कारखानों का विषैला उत्सर्जन नदियों को इतना प्रदूषित कर देता है कि उनका पानी पीने लायक नहीं रहता। हमारे शहरों के कूड़े के डलाव क्षेत्रों की गंदगी से भूजल भी विषैला हो रहा है। उसमें आर्सनिक, फ्लोराइड, लेड (सीसा) जैसे तत्वों के कारण उसे पीने वालों की अंग-विकृति देखने आ रही है। इस अवस्था में क्या यह पृथिवी रहने लायक रह सकेगी?

ताप-प्रदूषण : आज विश्व के सामने भूमंडल-तापन (ग्लोबल वार्मिंग) की गंभीर समस्या है। आज यातायात के साधनों में पेट्रोल, डीजल, द्रवीकृत गैस आदि के उपयोग से ऊर्जा उत्पन्न की जा रही है। तापीय विद्युत संयंत्रों में कोयला जलाकर बिजली पैदा की जा रही है उससे भूमण्डल के पर्यावरण का तापमान बढ़ता जा रहा है फलस्वरूप ध्रुवों की हिम और पहाड़ों के ग्लेशियर (हिमनद) पिघलते जा रहे हैं। इससे धीरे-धीरे समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है जिससे कुछ दशकों में छोटे-मोटे द्वीपों और समुद्रतटवर्ती क्षेत्रों के जलमग्न होने की संभावना है। इसका प्रभाव वहाँ की जनसंख्या पर पड़ना स्वाभाविक है।

भूमंडल के पर्यावरण में प्रदूषण के बढ़ने के साथ भूरक्षक ओजोन की परत में छेद हो गए हैं जो निरन्तर बढ़ रहे हैं। इससे पृथ्वी के पर्यावरण पर पैराबैंगनी विषैली किरणों का घातक प्रभाव हो सकता है।

ध्वनि प्रदूषण : आज सर्वत्र, विशेषतः शहरों में ध्वनि प्रदूषण की विकट समस्या है। हमारे कारखानों, मोटरों, बसों, रेलगाड़ियों, लाउडस्पीकरों की तेज कर्कश ध्वनि से हमारी श्रवण शक्ति प्रभावित हो रही है और बहरेपन की बीमारी बढ़ रही है। तेज आवाज से बजते टी.वी., रेडियो, ट्रांजिस्टर और ध्वनि विस्तारक यंत्रों के कारण मानसिक तनाव और सिरदर्द बढ़ रहा है इस ध्वनि प्रदूषण से हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। हम रात को ठीक से सो नहीं सकते। शरीर थका-थका सा रहता है। पाचनशक्ति बिगड़ जाती है। वैज्ञानिक दृष्टि से 25 डेसिबल से अधिक आवाज को ध्वनिप्रदूषण कहा जाता है परन्तु आज कल तो शहरों में 40-45 डेसिबल सामान्य बात है। भीड़ भरे कार, बसों, स्कूटरों वाले मार्गों पर यह 100 डेसिबल तक पाया जाता है।

पर्यावरण को स्वच्छ रखने और शुद्ध वायु के लिए वृक्षों, और वनस्पतियों को लगाना चाहिए। पेड़ों की कटाई या छँटाई उतनी ही करनी चाहिए जिससे पर्यावरण प्रभावित न हो। देखने में आया है कि लोग पेड़ों की छँटाई इतनी अधिक करते हैं कि वे रुंड-मुंड हो जाते हैं। हमारे घर के सामने एक अमलतास के पेड की इतनी अधिक छँटाई की गई कि गत दो वर्षों से उस पर फूल आने बंद हो गए। हमें पर्यावरण के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए ताकि वे अपना स्वभाव न छोड़ दें। हमें प्रतिवर्ष अधिक से अधिक वृक्षों को लगाकर अपने पर्यावरण को मानवमात्र के लिए सुखदायक बनाना चाहिए।

संपादक

सांख्य दर्शन

(अध्याय-1, सूत्र-66)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

पिछले सूत्र में हमने विस्तार से अनुमान प्रमाण के संबंध में विचार किया था और अनुमान प्रमाण का लक्षण बताया था। इसके बाद हम क्रमानुसार शब्द प्रमाण का लक्षण बताते हैं। सूत्र है-

आप्तोपदेशः शब्दः ।।66।।

अर्थ - (आप्त उपदेशः) आप्त पुरुषों का उपदेश (शब्दः) शब्द प्रमाण कहलाता है।

भावार्थ - किसी वस्तु के यथार्थ (वास्तविक) स्वरूप का ज्ञान 'आप्ति' है। जिन व्यक्तियों ने किसी वस्तु का साक्षात्कार करके उसका यथार्थ (सही) ज्ञान प्राप्त किया हुआ होता है, उस विषय में वे लोग 'आप्त' कहे जाते हैं। ऐसे व्यक्ति का उपदेश (कथन) शब्द प्रमाण होता है। इस प्रकार के उपदेशों की यथार्थता में भ्रम, प्रमाद, आलस्य आदि दोष रुकावट (बाधा) पैदा नहीं करते। इन आप्त व्यक्तियों के कथन से वस्तु का सही (यथार्थ) ज्ञान होता है। वेदादि आर्ष शास्त्रों में भ्रम, प्रमाद आदि दोषों की संभावना नहीं हो सकती, क्योंकि वे किसी व्यक्ति विशेष का कथन नहीं होता इसलिए उसकी प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध होती है। इन सब प्रमाणों से बुद्धिवृत्ति के द्वारा पुरुष को जो बोध होता है वह प्रत्यक्ष अनुभिति या शाब्द ज्ञान है। यही इन प्रमाणों का फल है।

सी-2ए, 16/90 जनकपुरी,
नई दिल्ली-10058

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की ऐतिहासिकता

-डॉ. सत्यपाल सिंह 'पुलिस कमिश्नर'

गतांक से आगे........

रामसेतु की वास्तविकता

नासा (अमेरिका) एजेंसी ने जैमिनि-11 आकाशयान (स्पेसक्राफ्ट) द्वारा वर्ष 2002 में एडमब्रिज (रामसेतु) के लिए गए चित्रों के वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर कहा था कि भारत तथा श्रीलंका को जोड़ने वाले पुल के ये अवशेष मनुष्यकृत है तथा लगभग 17.5 लाख वर्ष पुराने हैं। वाल्मीकि रामायण के आधार पर तो यह सच है कि श्रीराम ने लंका तक अपनी सेना को ले जाने के लिए एक पुल का निर्माण कराया था। अगर इस पुल का निर्माण काल 17.5 लाख वर्ष पूर्व का है तो हमें मानना पड़ेगा कि श्रीराम 28वें त्रेता के बीच में पैदा हुए, न कि त्रेता तथा द्वापर युगों की सन्धिवेला में और न ही 24वें त्रेता में। और ऐसा मानने से भी राशिचक्र की गणना पर कोई फर्क नहीं पड़ता। तब राशियों के चक्र को 66 चक्कर लगाने पड़े।

पुनः यह लिखना भी गलत न होगा कि जुलाई 2007 में नासा द्वारा श्री एन. के. रघुपति (सेतु समुद्रम् शिप कैनाल प्रोजेक्ट के अध्यक्ष) को भेजे गए अपने ईमेल सन्देश में कहा था कि सेतु के अवशेष किसी मानव प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। नासा ने अपने पुराने निर्णय/कथन को क्यों बदला इसके बारे में कुछ भी कहना अन्यथा न होगा। यदि एडमब्रिज/रामसेतु एक प्राकृतिक भूगर्भीय संरचना भी है तो भी इसका बखूबी प्रयोग तो श्रीराम द्वारा एक अस्थायी पुल बनाने में किया ही जा सकता था। उथले समुद्र की तलहटी पर बनी यह संरचना अपने कलेवर/आकार में बढ़ रही है या घट रही है, इसका वैज्ञानिक परीक्षण अभी तक नहीं हुआ है। इतने युगों व शताब्दियों के थपेड़े खाकर किसी भी मानव रचित संरचना

के अवशेष मिलना असम्भव है।

विदेशी दुष्प्रचार व दुराग्रहः अधिकतर विदेशी विद्वानों की मान्यता है कि भारतीय लोग मौखिक रूप से पढ़ते-पढ़ाते थे। वे लिखना नहीं जानते थे। इतिहास लिखने में उनकी रुचि नहीं थी। प्राचीन भारतीयों में कालगणना का कोई विचार नहीं था। आर्य लोग बाहर से आए और यहाँ के मूल निवासियों (द्रविड लोगों) को जीत कर यहाँ बस गए। सिंध ु घाटी (हडप्पा आदि) की सभ्यता को आर्यों ने बाहर से आकर नष्ट किया। मानव जाति का इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना है। आदमी का पूर्वज बन्दर व चिम्पांजी है आदि। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ऊपर की सभी बातें अवैज्ञानिक, असत्य व कोरा दुष्प्रचार हैं। यह बात आज जगजाहिर हो चुकी है कि विदेशी विद्वान मैक्समूलर, विलसन, मेकडोनल, रुडोल्फ, वेबर, ग्रिफिथ, विन्टरनिट्ज, मोनियर विलियम्स आदि सभी का मुख्य उद्देश्य एक ही था जो मैक्समूलर के शब्दों में जो उसने अपनी पत्नी को 1866 में लिखे पत्र में स्पष्ट किया था, कि "मेरा यह वेदों का भाष्य उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल ग्रन्थ है और मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरा कार्य उनकी (भारतीयों की) दीर्घकालीन अस्तित्व भावना को निर्मूल कर देगा।

वैदिक परम्परा की कालगणना के अनुसार सृष्टि का समय 4 अरब 32 करोड़ वर्ष है और संकल्प मंत्र "ओम् तत्सत् अद्य ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे श्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथमे चरणे........ गताब्दे" की गणना से भारतीयों ने सृष्टि रचना (मनुष्योत्पत्तिकाल) से लेकर आज तक काल की तथा इतिहास की धारा को अक्षुण्ण रखा है। मनुष्य उत्पति काल को अभी 1 अरब 97 करोड़ 29 लाख 49 हजार 113 वर्ष हो चुके हैं।

आस्था में अज्ञानता- श्रीराम व रामायण को असत्य व कल्पना की उड़ान बताने वाले विदेशी तथा उनके देशी उच्छिष्टभोजी जितने जिम्मेदार हैं उससे कम हमारे अपने ही रामचरित्र पर लिखने वाले कवि तथा दूसरे विद्वान भी नहीं हैं। रही-सही कसर आज 'रामकथा' करने वाले तथा 'रामलीला-करने करवाने वाले लोगों ने पूरी कर दी है। सच्ची आस्था को न जानकर ईश्वर के स्वरूप से अनभिज्ञ, हम लोगों ने श्रीराम को ईश्वर व भगवान का अवतार बना दिया। वहीं हमने वेदों के विद्वान्, व्याकरणाचार्य "बुद्धिमतां वरिष्ठम्" हनुमान को बन्दर बना दिया। रामसेतु बनाने वाले इंजीनियर नल-नील व जाम्बवंत को भालू/रीछ मान लिया, प्रसिद्ध सर्जन वैद्य सुषेण, अंगद, बाली आदि को भी बंदर बताया। सीता अपहरण के बाद आकाश में रावण से लड़ाई लड़ने वाले गृध्रकूट के भूतपूर्व राजा जटायु को भी गिद्ध पक्षी बना दिया। अधिक गलत बात तो यह है कि उस जमाने की सबसे सुन्दर व मन्त्रवित् विदुषी नारी 'तारा' का विवाह एक वानर (बन्दर) बाली से करा दिया। माता सीता को जमीन से पैदा होने वाली और अन्त में जमीन में समाने वाली बना दिया। वाल्मीकि ने तो राम को मनुष्य ही माना था, एक श्रेष्ठ पुरुष, मर्यादा पुरुषोत्तम जानकर अपने ही समय में (समकालीन होते हुए) रामकथा लिखी थी। राम में मनुष्योचित भावनाएँ दर्शायी थीं। उपन्यास की तरह कल्पित पात्र बनाकर तथा रामायण के मनुष्य पात्रों को पशु-पक्षी बताकर हमने स्वयं श्रीराम व रामायण की ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया।

विश्लेषण व कुछ प्रश्नः 1. क्या हमारे ऋषि मुनि-जिन्होंने जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सत्य का व्यवहार किया, सत्य ही बोला और सत्य ही लिखा- उनका कथन आज असत्य व झूठा है तथा हमारे विदेशी तथा पिछलग्गू आधुनिक विद्वान सच्चे हैं। क्या ऋषि वाल्मीकि, मुनि व्यास, कालीदास, भास,

भवभूति, अश्वघोष, आदि पुराने लेखक, समर्थ गुरु रामदास, गुरुगोविन्द सिंह, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और हमारी बौद्ध व जैन परम्पराओं के आचार्य झूठे थे, काल्पनिक बातें करते थे, स्वार्थी थे?

1. हमारे तो इतिहास, पुराण, स्मृतियाँ, औपनिषदिक कहानियाँ कपोल कल्पित हैं तथा यूरोप, अमेरिका, पाश्चात्य देशों में चलने वाली किंवदन्तियाँ, कहानियाँ सच्चा इतिहास हैं।
2. क्या दुनिया में आज तक किसी भी जाति व समाज ने किसी काल्पनिक व्यक्ति का 'जन्मदिवस' मनाया या सैकड़ों-हजारों सालों से मनाते आए हैं? अगर यह सत्य नहीं तो हजारों वर्षों से देश-विदेश में मनाया जाने वाला राम जन्मोत्सव रामनवमी झूठ पर कैसे आधारित हो सकता है?
3. क्या आज तक किसी काल्पनिक मनगढन्त व्यक्ति वा चरित्र पर 10-20 लेखकों ने लिखा है? यदि नहीं तो सैकड़ों ने लिखा है? यदि नहीं तो सैंकड़ों नहीं हजारों ऋषि, मुनि, कवि, लेखकों द्वारा दुनिया की विभिन्न भाषाओं में, दुनिया के विभिन्न देशों में हजारों वर्षों से लगातार लिखा गया 'रामचरित' व 'रामायण' कपोल-कल्पित कैसे हो सकता है?
4. दुर्जनतोष न्याय से अगर हम यह मान भी लें कि राम तथा रामायण कवि की कल्पना हैं तो यह मानने में तो कोई दोष नहीं है कि स्वयं कवि/लेखक का तो अस्तित्व था। वह तो कोई काल्पनिक व्यक्ति नहीं था।
5. आज भी अगर किसी व्यक्ति की उम्र पता लगानी हो तो सबसे पहले उसके स्कूल कालिज/जन्मतिथि सम्बन्धी प्रमाण-पत्र, कुण्डली आदि पर भरोसा किया जाता है। अगर किसी के पास कोई कागजात नहीं, पढ़ा लिखा नहीं तब पुलिस वाले उसका ओसीफिकेशन/मेडिकल टेस्ट कराते हैं। पर जब बात किसी पुराने ऐतिहासिक

पुरुष की होती है तब हम साहित्यिक प्रमाणों व लेखों को छोड़कर उसके अवशेष, भवन, मूर्ति, मुद्रा, हड्डी जमीन में क्यों खोजते हैं?

6. कुछ बाहरी देशों के लोग आज भी राम, रावण, लक्ष्मण, सीता के अस्तित्व को मानते हैं। रामायण को मानते है तभी तो श्रीलंका की संसद में विभीषण का राजतिलक दिखाया गया, अशोक वाटिका को सैलानी स्थल बनाया गया है और तो और 'रावण' के वंशजों को पेंशन दी जा रही है। थाईलैंड में भी एक अयोध्या है। वहाँ का राजा बौद्धधर्मी होता हुआ भी राम कहलाता है। आज वहाँ 10वाँ राम राजा है।

अंत में, यह कहना भी गलत न होगा कि यदि अभी भी हम राम व रामायण को ऐतिहासिक न मानकर काल्पनिक कहते हैं तो यह एक दुराग्रह ही होगा फिर किसी की आस्था हो या न हो पर इतिहास तो इतिहास है। कोई अयोध्या में, सरयू अथवा गंगा नदी में, श्रीलंका में, श्री राम में, सीता में, हनुमान में आस्था रखे या न रखे पर उनकी ऐतिहासिकता को संदिग्ध कैसे कहा जा सकता है? अपने देश के इतिहास लेखकों, विद्वानों व विश्वविद्यालयों को मैं स्वामी विवेकानन्द के शब्द याद दिलाना चाहता हूँ- "जब लोग अपने भूतकाल, अपने पूर्वजों पर शर्म महसूस करने लगते हैं तो समझना चाहिए कि उस देश की संस्कृति का अंत शुरु हो गया।" श्रीराम का जन्मोत्सव 'रामनवमी' हम लोगों में सच्ची आस्था पैदा करे, जिसमें अज्ञान व अन्धविश्वास न हो तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह हम चरित्र के धनी तथा धर्म की मर्यादा मानने वाले बनें। ऐसा सत्प्रयास होना ही चाहिए।

किसी का दोष मत देखो
(बुद्ध जयन्ती पर)

भगवान् बुद्ध के एक शिष्य ने एक दिन भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बुद्ध ने उससे पूछा– 'तुम क्या चाहते हो?'

शिष्य – यदि भगवान् आज्ञा दें तो मैं देश में घूमना चाहता हूँ।

बुद्ध – लोगों में अच्छे-बुरे सब प्रकार के मनुष्य होते हैं। बुरे लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे और तुम्हें गालियाँ देंगे। उस समय तुम्हें कैसा लगेगा?

शिष्य – मैं समझ लूँगा कि वे बहुत भले लोग हैं, क्योंकि उन्होंने मुझ पर धूल नहीं फेंकी और मुझे थप्पड़ नहीं मारें।

बुद्ध – उनमें से कुछ लोग धूल भी फेंक सकते हैं और थप्पड़ भी मार सकते हैं।

शिष्य – मैं उन्हें भी इसलिए भला समझूँगा कि वे मुझे डंडे नहीं मारते।

बुद्ध – डंडे मारने वाले भी दस-पाँच मनुष्य मिल सकते हैं।

शिष्य – वे मुझे हथियारों से नहीं मारते, इसलिए वे भी मुझे भले जान पड़ेंगें।

बुद्ध – देश बहुत बड़ा है। जंगलों में ठग और डाकू रहते हैं। डाकू तुम्हें हथियारों से भी मार सकते हैं।

शिष्य – वे डाकू भी मुझे दयालु जान पड़ेंगे क्योंकि उन्होंने मुझे जीवित तो छोड़ा।

बुद्ध – यह कैसे जानते हो कि डाकू जीवित छोड़ ही देंगे। वे मार भी डाल सकते हैं।

शिष्य – यह संसार दुःखस्वरूप है। इसमें बहुत दिन जीने से दुःख ही दुःख होता है। आत्महत्या करना तो महापाप है। लेकिन कोई दूसरा मार दे, तो यह तो उसकी दया ही है।

शिष्य की बात सुन कर भगवान् बुद्ध बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा: 'अब तुम पर्यटन करने योग्य हो गये हो। सच्चा साधु वही है, जो कभी किसी दशा में किसी को बुरा नहीं कहता। जो दूसरों की बुराई नहीं देखता, जो सबको भला ही समझता है वही परिव्राजक होने योग्य है।'

भारतीय धर्म एवं संस्कृति के विश्व प्रचारक : स्वामी विवेकानन्द

(150 वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में)

-डॉ. भवानीलाल भारतीय

1893 में अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में भारतीय हिन्दू धर्म तथा पुरातन वैदिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने के लिए जब स्वामी विवेकानन्द मद्रास से जलयान में सवार हुए तो पत्रकारों ने उनसे इस विदेश यात्रा का प्रयोजन पूछा- उत्तर में स्वामी जी ने कहा "आई गो फोर्थ टु प्रीच ए रिलीजन ऑफ ह्विच बुद्धिज्म इज ए रेबल चाइल्ड एण्ड क्रिश्चियनिटी ए डिसटेंट ईको"- अर्थात् मैं उस धर्म का प्रचार करने जा रहा हूँ, बौद्ध धर्म जिसका एक विद्रोही बच्चा है और ईसाइयत तो दूर गूँजने वाली जिसकी प्रतिध्वनि मात्र है। उनके कथन का अभिप्राय था कि एशिया के अधिकांश देशों में मान्य बौद्ध धर्म व्यापक हिन्दू धर्म का एक सुधार आन्दोलन मात्र है और ईसाइयत की नैतिक शिक्षाएँ इसी हिन्दू धर्म की गीता तथा योगदर्शन में उपदिष्ट नैतिक शिक्षाओं का निचोड़ मात्र है।

ये ही विवेकानन्द जब शिकागो में अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन को सम्बोधित करने के लिए खड़े हुए तो उनका श्रोता समाज को सम्बोधन था - "अमेरिका निवासी मेरे भाइयो एवं बहनो।" पश्चिम का यह समाज तो सम्बोधन के लिए प्रयोग में आने वाले लेडीज एण्ड जैंटलमैंन के औपचारिक सम्बोधन का ही अभ्यस्त था, इसलिए स्वयं के लिए प्रयुक्त 'भाइयो बहनो का प्रिय सम्बोधन उनको नया- सा लगा। फलतः देर तक करतल ध्वनिपूर्वक इस सम्बोधन का स्वागत हुआ। अपने इस व्याख्यान में स्वामीजी ने पुरातन हिन्दू धर्म के दया, सहिष्णुता, प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना तथा अहिंसा एवं सत्य जैसी वैश्विक मान्यताओं का खुलासा किया तो इन श्रोताओं के लिए यह प्रवचन सर्वथा नया तथा प्रेरक था। भारत में ईसाई प्रचारकों का निर्यात करने वाले पश्चिमी देशों से उनका आग्रह था कि धर्म एवं अध्यात्म में सदा विश्व का सिरमौर रहे भारत में आज ईसाइयत के प्रचारकों की आवश्यकता नहीं है। हमें तो

आपके विज्ञान, तकनीक तथा औद्यौगिक प्रगति के सूत्रों की आवश्यकता है जिससे भारत की दरिद्रता को दूर कर उसे विश्व का एक समृद्ध देश बनाया जा सके।

कोलकाता के एक समृद्ध कायस्थ परिवार में जनमे स्वामी विवेकानन्द का पूर्वाश्रम का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था और वे बंगाल हाईकोर्ट के वकील विश्वनाथ दत्त के पुत्र थे। अल्पायु में पिता के देहान्त के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति जब बिगड़ने लगी तो नरेन्द्र की चिन्ता बढ़ी तथा वह उदासीन-सा रहने लगा। ऐसे में उन्हें यह कहा गया कि वे दक्षिणेश्वर में रानी रासमणि द्वारा स्थापित काली मंदिर के पुजारी रामकृष्ण से सम्पर्क बनाएँ। उनकी निराशा और चिन्ताएँ दूर होंगी। यों तो युवक नरेन्द्र आचार्य रामकृष्ण के समीप अपनी संसारिक आधि-व्याधियों तथा भौतिक कठिनाइयों को दूर करने के उपाय जानने के लिए आया था, किन्तु परमहंस देव के चमत्कारी व्यक्तित्व में उन्हें पराकोटि की आस्तिकता, पराशक्ति के प्रति समर्पण और भक्ति भाव जैसे उदात्त तत्वों की शिक्षा मिली। अब संन्यासी होकर उन्होंने अपने आचार्य देव के इन्हीं उपदेशों का देशव्यापी प्रचार करने का व्रत लिया।

स्वामी विवेकानन्द ने जिस वेदान्त सिद्धान्त का सार्वभौम रूप प्रचारित किया वह शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का ही रूप है तथापि वे वेदान्त को पुरुषार्थ प्रधान, कर्मप्रधान बनाने के पक्षपाती थे। वे प्राणिमात्र में परमात्मा की छवि को देखते थे अतः समाज में निम्न समझे जाने वाले अछूतों एवं अन्त्यजो के वे सम्बल बने। उन्होंने नर में नारायण को देखने की बात कही तथा स्वयं के द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के द्वारा अनेक सेवा प्रकल्यों की स्थापना की। मनुष्य मात्र के कष्टों को दूर करने की प्रतिज्ञा करने वाले स्वामी विवेकानन्द ने वार्तालाप के एक प्रसंग में बंगला नाटककार गिरीश घोष से कहा था देखो गिरीश बाबू मन में ऐसे भाव उदय होते हैं कि यदि जगत् के दुःखों को दूर करने के लिए मुझे हजारों बार जन्म लेना पड़े तो भी मैं तैयार हूँ और मन में विचार आता है कि केवल अपनी मुक्ति से ही क्या होगा? सबको साथ लेकर उस मार्ग पर जाना होगा।" उनकी दृष्टि में सर्वधर्म ही

परमधर्म है।

संन्यास लेकर स्वामीजी ने वेदादि शास्त्र ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन किया। उन्होंने भक्तियोग, कर्मयोग, प्रेमयोग आदि ग्रन्थों के द्वारा भारतीय दर्शन में योग के व्यापक अर्थ को स्पष्ट किया। वे हिन्दू धर्म और समाज में प्रत्येक स्तर पर एकता लाने के पक्षपाती थे। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा- "जब एक जाति, एक वेद (सर्वमान्य धर्म शास्त्र) आधारित एकता होगी तभी सतयुग आयेगा?" उन्होंने कृष्ण के उन आदर्शों को अपनाने की बात कही जिनका महाभारत में उल्लेख है। वार्तालाप के एक प्रसंग में उनका कहना था- " अब वृन्दावन के वंशीधारी कृष्ण के ध्यान से कुछ नहीं बनेगा, इससे जीव का उद्धार नहीं होगा। अब प्रयोजन है- गीता के सिंहनादकारी कृष्ण का।" वे मानते थे कि मनुष्य की भाषा में कृष्ण जैसा श्रेष्ठ आदर्श कभी चित्रित नहीं हुआ।" वे धर्म तत्व का निर्णय करने में युक्ति एवं बुद्धि का प्रयोग करना आवश्यक समझते थे। उनका कथन था - "धर्म भाव को विचार बुद्धि द्वारा नियमित करना उचित है। सच्चे उपदेशों की कसौटी यह है कि वह उपदेश तर्क के विपरीत न हो।" नारी जाति के उत्थान का समर्थन करते हुए उन्होंने प्राचीन भारत की विदुषी नारियों के बारे में लिखा - "वैदिक और औपनिषदिक युग में मैत्रेयी और गार्गी सदृश पुण्यशीला महिलाओं ने ऋषियों का स्थान लिया था। वेदज्ञ विद्वानों की सभा में गार्गी ने याज्ञवाल्क्य को ब्रह्म के विषय में शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा था।"

कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं ने पाश्चात्य जगत् को प्रभावित किया। जब वे इंग्लैण्ड गये तो वैदिक विद्वान प्रो. मैक्समूलर से भेंट की तथा वैदिक विषयों पर विस्तार से वार्तालाप किया। पश्चिम की एक विदुषी नारी तो उनकी प्रधान शिष्या भगिनी निवेदिता नाम धारण कर भारत आईं और रामकृष्ण मिशन को अपना कार्यस्थल बनाया। स्वामी विवेकानन्द दीर्घजीवी नहीं हुए। तथापि उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं विचारों से पूर्व तथा पश्चिम के विचारपूर्ण जनसमाज को प्रभावित किया यह निर्विवाद है।

3/5 शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

इतिहास के झरोखे से

-श्री अश्विनी कुमार

जीवन में कभी-कभी अतीत की गहराई में झाँकना बड़ा ही अच्छा लगता है और सुखप्रद भी। यहाँ यह बात मैं राष्ट्रों के अतीत के संदर्भ में कह रहा हूँ। भारतवर्ष के जिस तंत्र में हम रह रहे हैं और मूर्खतावश जिसे 'प्रजातंत्र' कहते हैं वह आजादी के पाँच दशकों बाद कैसा सिद्ध हुआ है, इस पर यहाँ मैं टिप्पणी नहीं करना चाहता।

मैं त्रेतायुग के काल से इस राष्ट्र की विभिन्न शासन प्रणालियों का अध्ययन पिछले दिनों कर रहा था। इसी क्रम में कुछ ऐसे तथ्यों की जानकारी मिली जिन्हें न केवल मैं पाठकों के साथ सांझा करना चाहता हूँ, अपितु मेरी मंशा है कि हम कुछ बातों की प्रासंगिकता आज के युग में भी जानें। यह बात सत्य है कि श्रीराम को परिस्थितिवश वनवास जाना पड़ा, फिर भी ज्येष्ठ दशरथनंदन होने के नाते महाराज दशरथ यह देखकर चिंतित थे कि श्रीराम चिंता में हैं। कुछ प्रश्न उनके मन में उमड-घुमड़ कर आते हैं और बाद में महर्षि वसिष्ठ को विस्तार में सारी बात बताई। श्रीराम और महर्षि वसिष्ठ में एक लम्बा वार्तालाप हुआ। आज परम सौभाग्य की बात यह है कि इन सभी वार्तालापों का सम्पूर्ण वृतांत 'योगवसिष्ठ' मूलतः संस्कृत में उपलब्ध ग्रंथ तो है ही, उसके कुछ अच्छे भाष्य भी उपलब्ध हैं।

आज इसे धार्मिक ग्रंथ की संज्ञा दी जाती है। योगशास्त्र का अद्भुत ग्रंथ भी माना जाता है, वैराग्य की भी बहुत सी बातें इससे हैं परन्तु एक राजा का क्या कर्तव्य होना चाहिए, उसमें ऐसा सब कुछ निहित है। 'योग वसिष्ठ' अनुपम है' किसी अन्य कृति से इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

ठीक इसी प्रकार महाभारतकाल में एक अंधे राजा ने जब ये देखा कि उसकी विदुषी पत्नी ने भी अपनी आँखों में पट्टी बाँध ली और सारे राजकुमार नालायक निकल गए तो उस राजा ने विदुर जी को निमंत्रण दिया।

एक छोटा परन्तु बड़ा सारगर्भित ग्रंथ प्रकट हुआ। हम उसे कहते हैं-विदुरनीति। भावी घटनाएँ कुछ और थीं, वरना

धृतराष्ट्र का यह प्रयास स्तुत्य था।
अब शिवाजी राजे की बात।
भारतवर्ष में हिन्द-पद-पादशाही का स्वप्न पूरा हुआ। शिवाजी महाराज को दिव्य निर्देश तो मिले, परन्तु उससे पहले एक अद्भुत कृति प्रकाश में आई उसका नाम है- दास बोध। मनुष्य को स्वयं को अपनी पूर्णता में समझ पाने की वह अद्भुत कृति है। उसका आशय क्या है, क्या आप जानना चाहेंगे। आशय है:
'इक बहाना था जुस्तजु तेरी
दरअसल थी, मुझे खुद अपनी तलाश।'
दास बोध अद्भुत है। समर्थ गुरु रामदास जी ने आपने प्रिय शिष्य शिवा की झोली में 'दास बोध' डाला और शिवाजी ने समस्त राजपाट उन्हें समर्पित कर दिया और 'राजध्वज' को भगवे में रंग दिया और नारा लगा 'जय-जय-जय रघुवीर समर्थ।
इस श्रृंखला में कौटिल्य को कैसे भूलें।
अर्थशास्त्र का एक-एक वचन चीख-चीख कर कह रहा है कि इससे उत्कृष्ट रचना पिछले हजारों वर्षों में नहीं रची गई। योग वसिष्ठ, विदुरनीति, दास बोध और अर्थशास्त्र सब कुछ हमारे पास था, फिर भी हम सदियों गुलाम रहे क्योंकि हम अपनी जड़ों से कट गए।
आज इतिहास अपने आपको दोहरा रहा है। जिस राह पर हम चल रहे हैं वह सिवाय 'विध्वंस' के हमें कहाँ ले जाएगा? कारण क्या है? कारण एक ही है कि 'गोरे अंग्रेजों' के हाथ से निकल कर राष्ट्र काले अंग्रेजों के हाथ में चला गया। यह सारे के सारे 'मैकाले' के मानसपुत्र थे। इन्होंने भारत को इसकी जड़ों से काट दिया।
'धर्मनिरपेक्षता' नामक शब्द भारत के माथे पर कोढ बनकर उभरा। यह आज भी इस राष्ट्र के लिए कलंक है। धर्म के प्रति न तो आज तक कोई निरपेक्ष हो सका है और न ही भविष्य में होगा क्योंकि धर्म चेतना का विज्ञान है, अतः यह हमेशा एक ही रहता है, दो नहीं हो सकता।

क्षमा, दया, शील, सच्चरित्रता यह धारण करने योग्य हैं, अतः जो इन्हें धारण करता है वही धार्मिक है, जो निरपेक्ष है, वह बेईमान है। अपने संस्कारों को अक्षुण्ण रखते हुए धार्मिक रहा जा सकता है–

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा– 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।

इसका एक ही आशय है, अपनी निजता न खोओ।

अपने धर्म में मृत्यु भी श्रेयस्कर है। ढोंगी न बनो। ढोंगी को तो नरक में भी जगह नहीं मिलती। भारत में सर्वधर्म समभाव के प्रणेता प्रकट हो गए। राजनीति ने ऐसा कलुष पैदा किया। भगवान कृष्ण ने कहा–अपना धर्म श्रेष्ठ, परन्तु किसी की विचारधारा का अनादर न करो। इन बेईमान पाखंडियों को देखो, जो सवेरे मजारों पर चादर चढ़ाते हैं दोपहर को मंदिरों को जाते हैं, शाम को चर्चों में जाकर भाषण देते हैं तथा रात को गुरुद्वारे जाकर सिरोपा लेते हैं।

ऐसा लगता है, इन्हें बुद्धत्व प्राप्त हो गया?

सावधान! ये पहले दर्जे के पाखंडी हैं। यह ढोंग कर रहे हैं, जो राजनेता परमहंसों जैसा आचरण करे उसे क्या कहेंगे? भारत के एक राज्य कश्मीर से चुन-चुन कर 'हिन्दुओं' को खदेड़ दिया गया था। यह राष्ट्र का बहुसंख्यक समाज है, यह अपने ही अंग में नहीं रह सकता। इनकी रक्षा का प्रबंध यह सरकार नहीं कर सकी क्योंकि सारी की सारी सरकारें 'धर्मनिरपेक्ष' है और पंडितों के लिए न्याय माँगने वाले साम्प्रदायिक करार दिए जाते रहे।

'अगर सच कहना बगावत है, तो समझो हम भी बागी हैं।' इतिहास के कुछ पन्नों का सहारा लेकर अपनी बात को स्पष्ट करूँगा कि इस हिन्दुस्तान में हिन्दुओं से कैसा व्यवहार होता रहा है। सिर्फ आज वोट बैंक की राजनीति की जा रही है। वोटों की खातिर अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की नीतियाँ जारी हैं। आज मनमोहन सरकार कठघरे में खड़ी है और इतिहास का काल पुरुष सरकार से पूछता है– क्या हिन्दुस्तान में हिन्दू होना गुनाह है?

संपादक
पंजाब केसरी

शिवाजी जयन्ती

शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर-दरबार में दरबारी थे। बीजापुर के नवाब की ओर से जबकि शाहजी अहमदनगर की लड़ाई में फँसे थे, मालदार खान ने दिल्ली के बादशाह को प्रसन्न करने के लिये बालक शिवाजी तथा उनकी माता जीजाबाई को सिंहगढ़ के किले में बन्द करने का प्रयत्न किया। लेकिन उसका यह दुष्ट प्रयत्न सफल नहीं हो सका। शिवाजी के बचपन के तीन वर्ष अपने जन्म स्थान शिवनेर के किले में ही बीते। इसके बाद जीजाबाई को शत्रुओं के भय से अपने बालक के साथ एक किले से दूसरे किले में बराबर भागते रहना पड़ा। किन्तु इस कठिन परिस्थिति में भी उस वीर माता ने अपने पुत्र की सैनिक शिक्षा में त्रुटि नहीं आने दी।

माता जीजाबाई शिवाजी को रामायण, महाभारत तथा पुराणों की वीर-गाथाएँ सुनाया करती थीं। नारो, श्रीमल, हनुमन्त तथा गोमाजी शिवाजी के शिक्षक थे और शिवाजी के संरक्षक थे प्रचण्ड वीर दादाजी कोंडदेव। इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि बालक शिवाजी बहुत छोटी अवस्था में ही निर्भीक एवं अदम्य हो गये। जन्मजात शूर मावली बालकों की टोली बनाकर वे उनका नेतृत्व करते थे और युद्ध के खेल खेला करते थे। उन्होंने बचपन में विधर्मियों से आर्य धर्म, देव मन्दिर तथा गौओं की रक्षा का दृढ़ संकल्प कर लिया।

शाहजी चाहते थे कि उनका पुत्र भी बीजापुर दरबार का कृपापात्र बने। शिवाजी जब आठ वर्ष के थे, तभी उनके पिता एक दिन उन्हें शाही दरबार में ले गये। पिता ने सोचा था कि दरबार की साज-सज्जा, रोब-दाब, हाथी-घोड़े आदि देखकर बालक रोब में आ जाएगा और दरबार की ओर आकर्षित होगा। किन्तु शिवाजी तो बिना किसी ओर देखे तथा बिना किसी ओर ध्यान दिये पिता के साथ ऐसे चलते गये, जैसे किसी साधारण मार्ग पर चल रहे हों। नवाब के सामने पहुँचकर पिता ने शिवाजी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा-बेटा! बादशाह को सलाम करो। बालक ने मुड़कर पिता की ओर देखा और बोला बादशाह मेरे राजा नहीं हैं। मैं इनके आगे सिर नहीं झुका सकता। दरबार में सनसनी फैल गई।

नवाब बालक की ओर घूरकर देखने लगा। किन्तु शिवाजी ने नेत्र नहीं झुकाये। शाहजी ने सहमते हुए प्रार्थना की शहनशाह! क्षमा करें। यह अभी बहुत नादान है। पुत्र को उन्होंने घर जाने की आज्ञा दे दी। बालक ने पीठ फेरी और निर्भीकतापूर्वक दरबार से चला आया। घर लौटकर शाहजी ने जब पुत्र को उसकी धृष्टता के लिए डाँटा, तब पुत्र ने उत्तर दिया-पिताजी! आप मुझे वहाँ क्यों ले गये थे? आप तो जानते हैं कि मेरा मस्तक भगवान् तथा आपको छोड़कर और किसी के सामने झुक नहीं सकता। शाहजी चुप हो गए। इस घटना के चार वर्ष पीछे की एक घटना है उस समय शिवाजी की अवस्था बारह वर्ष की थी। एक दिन बालक शिवाजी बीजापुर के मुख्य मार्ग पर घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि एक कसाई एक गाय को रस्सी में बाँधे लिये जा रहा है। गाय आगे जाना नहीं चाहती है, पीछे खींचती हुई, चीत्कार करती है। और इधर-उधर कातर नेत्रों से देखती है। कसाई उसे डंडे से बार-बार पीट रहा है। इधर-उधर दुकानों पर जो हिन्दू हैं, वे मस्तक झुकाये यह सब देख रहे हैं। इनमें इतना साहस नहीं कि कुछ कह सकें। विदेशियों के राज्य में रहकर वे कुछ बोलें तो पता नहीं क्या हो। लेकिन लोगों की दृष्टि आश्चर्य से खुली की खुली रह गई। बालक शिवा की तलवार म्यान से निकलकर चमकी। वे कूदकर कसाई के पास पहुँचे और गाय की रस्सी उन्होंने काट दी। गाय एक ओर भाग गयी। कसाई कुछ बोले, इससे पहले तो सिर धड़ से कटकर भूमि पर लुढ़कने लगा था।

समाचार दरबार में पहुँचा। नवाब ने क्रोध से लाल होकर कहा तुम्हारा पुत्र बड़ा उपद्रवी जान पड़ता है। शाहजी! तुम उसे तुरन्त बीजापुर से बाहर कहीं भेज दो।

शाहजी ने आज्ञा स्वीकार कर ली। शिवाजी अपनी माता के पास भेज दिये गये, लेकिन अन्त में एक दिन वह भी आया कि बीजापुर नवाब ने स्वतंत्र हिन्दू सम्राट् के नाते शिवाजी को अपने राज्य में निमन्त्रित किया और जब शिवाजी हाथी पर सवार होकर बीजापुर के मार्गों से होते दरबार में पहुँचे, तब नवाब ने आगे आकर उनका स्वागत किया तथा उनके सामने मस्तक झुकाया।

शरीर में स्वयं रोग-मुक्त होने की क्षमता होती है

डॉ. चंचलमल चोरडिया

रोग का मूल अज्ञान-रोग की तीन अवस्थाएँ हैं- शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। जिस अवस्था का रोग होता है उसके अनुरूप यदि उपचार नहीं किया जाता है तो रोग से मुक्ति सम्भव नहीं होती। आजकल अधिकांश व्यक्ति मानसिक और आत्मिक रोगों को तो रोग मानते ही नहीं, क्योंकि मन की एवं आत्मा की शक्ति का न तो उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान होता है और न वे उसको जानने एवं समझने का प्रयास ही करते हैं। शरीर से मन की शक्ति बहुत ज्यादा होती है और मन से आत्मा की शक्ति अनन्तगुणी होती है। मन की शक्ति का उस समय आभास होता है जब व्यक्ति को चलने-फिरने में कष्ट होता है, परन्तु उसके सामने मारणान्तक भय उपस्थित होने पर वह दौड़ने लग जाता है। शारीरिक वेदना से तड़फने वाले एवं मृत्यु की शय्या पर पड़े अन्तिम श्वास गिनने वालों के सामने जब लम्बे समय के पश्चात्, यदि कोई स्नेही परिजन मिलने पहुँचता है तो क्षणमात्र के लिए वह सारे दुःख दर्द भूल जाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि चिकित्सा करते समय एक मात्र शरीर को इतना अधिक महत्त्व न दें, जिससे आत्म विकार बढ़े और मनोबल कमजोर हो। यह तो नौकर को मालिक से ज्यादा महत्त्व देने के समान अबुद्धिमत्तापूर्ण होगा। ऐसा करना कर्जा चुकाने के लिए ऊँचे ब्याज की दर पर दूसरों से कर्जा लेकर चुकाने के समान गलत आचरण है।

रोग के कारणों से बचना आवश्यक-

केवल शारीरिक रोगों का ही विचार करें, तो उसके भी अनेक कारण होते हैं। जैसे हमारे पूर्व जन्म के उपर्जित वेदनीय कर्मों का उदय, पैतृक संस्कार, असंयमित, अनियमित एवं अनियन्त्रित जीवन-पद्धति, ज्ञानेन्द्रियों का दुरुपयोग, प्रमाद एवं अशुद्ध प्रवृत्तिमय जीवन इत्यादि। पुराने एवं असाध्य रोग की स्थिति में तो उसका कारण ढूँढने के लिए हमें, जीव जब से माता के गर्भ में आता है तब से वर्तमान परिस्थितियों तक रोग के

कारणों का अध्ययन करना होगा। सभी प्रकार के रोगों की अभिव्यक्ति शरीर में विभिन्न असन्तुलनों के रूप में प्रकट होती है। एक महत्त्वपूर्ण लोकोक्ति है- 'पैर गरम, पेट नरम और सिर ठण्डा, फिर डॉक्टर आवे तो मारो डण्डा' कितनी यथार्थपूर्ण है। अर्थात् यदि शारीरिक उत्सर्जन बराबर हो तो उनका पेट प्रायः नरम व स्वच्छ रहता है। इसीलिए कहा है कि 'पेट साफ तो सब रोग माफ'। जो तनावमुक्त, चिन्ता मुक्त और मस्त रहता है उसका सिर ठण्डा रहता है। अर्थात् शारीरिक श्रम, सुव्यवस्थित पाचन एवं तनावमुक्त जीवन-पद्धति शारीरिक स्वस्थता के लिए आवश्यक है तथा जितनी इनकी उपेक्षा होगी, शरीर में रोगों की संभावना बढ़ती जायेगी। अतः स्वस्थ जीवन जीने के लिए व्यक्ति की सजगता, सम्यक् पुरुषार्थ, भागीदारी तथा स्वावलम्बी बनने की तीव्रतम भावना आवश्यक होती है।

जिस प्रकार खेत में बीज बोने से पूर्व उसकी सफाई अति आवश्यक होती है, फूटे हुए घड़े को भरने से पहले उसके छिद्र को बन्द करना जरूरी है, तालाब खाली करने के लिए पानी की आवक रोकना अनिवार्य होता है। मन के लंगड़े व्यक्ति को स्वर्ग के हजारों देवता भी अपने पैरों पर खड़ा नहीं रख सकते। ठीक उसी प्रकार रोग के सही कारणों का निदानकर, उसको दूर किये बिना तथा भविष्य में उससे बचने हेतु स्वास्थ्य के नियमों का पालन किये बिना, हम लाख प्रयास करने के बावजूद भी दीर्घकाल के लिए रोगों से पूर्णरूपेण छुटकारा नहीं पा सकते।

चिकित्सा में भ्रम-कुछ समय के लिए तात्कालिक राहत पहुँचाने वाली चिकित्सा को प्रभावशाली चिकित्सा एवं भविष्य में उससे पड़ने वाले दुष्प्रभावों की उपेक्षा करना स्वयं को धोखे में रखना होता है। जिस प्रकार दीमक लगी लकड़ी पर रंग रोगन करने से मजबूती नहीं आ सकती, कचरे को दबाकर रखने से उसमें अधिक सड़ाँध एवं अवरोध की समस्या ही पैदा होती है, शत्रु को घर में शरण देना बुद्धिमत्ता नहीं; ठीक उसी प्रकार बाजार में मिलने वाली दवाइयाँ और इंजेक्शन, जो शरीर

की प्रतिरोधशक्ति क्षीण करते हैं, प्रायः रोग के कारणों को मिटाने के बजाय उसको दबाने अथवा रोग को अन्य रूप में प्रकट करने का मार्ग प्रशस्त करना है, जिनसे कभी-कभी भविष्य में अधिक घातक परिणाम होने की संभावना बनी रहती है। रोगी के लिए दवा जीवन का अंग बन जाती है और उसे छोड़ते ही समस्या उग्र रूप धारण करने लग जाती है। जनसाधरण की ऐसी मान्यता हो गई है कि जितना महँगा उपचार होता है, डॉक्टर की फीस जितनी ज्यादा होती है उतना ही उपचार प्रभावशाली होता है। भ्रामक विज्ञापन और डॉक्टरों के पास होने वाली भीड़ ही उनकी योग्यता का मापदण्ड बन रही है। वास्तव में अंग्रेजी चिकित्सा का आधार वैज्ञानिक कम एवं विज्ञापन ज्यादा है, जिसका मूल कारण शरीर की असीम क्षमताओं के प्रति हमारा अज्ञान और डॉक्टरों के प्रति हमारी अन्धश्रद्धा ही समझना चाहिये।

अनन्त शक्ति का स्रोत : मानव शरीर- मानव शरीर की संरचना इस विश्व का सबसे बड़ा आश्चर्य है। आधुनिक विज्ञान की शायद ही कोई ऐसी मशीन है जिससे मिलती-जुलती मशीन हमारे शरीर के अन्दर न हो। मस्तिष्क जैसा सुपर कम्प्यूटर, हृदय एवं गुर्दे जैसा शुद्धीकरण संयंत्र, आमाशय जैसा रासायनिक कारखाना, लसिका तंत्र जैसी सफाई व्यवस्था, नाड़ी तंत्र जैसी मीलों लम्बी संचार व्यवस्था, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों जैसी प्रशासनिक व्यवस्था, आँखों जैसा केमरा, प्रकाश की गति से भी तेज गति वाला मन इत्यादि एक ही स्थान पर, अन्यत्र कहीं ढूँढने पर भी मिलने कठिन हैं। इससे भी बड़ा आश्चर्य तो यह है कि सारे अंग और अवयव शरीर में व्यवस्थित ढंग से अपना कार्य करते हुए एक दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग, समन्वय एवं तालमेल रखते हैं। शरीर के किसी भाग में सुई अथवा पिन चुभने मात्र से सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और मन अपना कार्य छोड़कर उस स्थान पर अपना ध्यान केन्द्रित कर देते हैं तथा जब तक चुभन दूर नहीं होती आँखों से अश्रु, मुँह से आह निकलने लगती हैं। प्रश्न है कि जिस शरीर में

इतना सहयोग एवं तालमेल हो, क्या उसमें कभी कोई अकेला रोग हमला बोल सकता है? वास्तव में जिस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं वह रोगों के परिवार का नेता होता है और उसके पीछे सैकड़ों अप्रत्यक्ष सहयोगी रोग होते हैं, जिनकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता। आज रोगों के नाम पर रोगियों को गुमराह किया जा रहा है। रोगों की लंबी-लंबी व्याख्याएँ की जा रही हैं, परन्तु स्वास्थ्य का मूलाधार गौण किया जा रहा है। मानो पेड़ को सुरक्षित रखने के लिए जड़ के बजाय फूल पत्ती को सींचा जा रहा है। शरीर को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट कर उसको देखने-समझने का प्रयास हो रहा है। जबकि उपचार करते समय जब तक पूरे शरीर को एक इकाई माने बिना रोग का इलाज नहीं किया जायेगा, तब तक सम्पूर्ण आरोग्य-प्राप्ति की कल्पना मिथ्या है।

भोजन में भावों का महत्त्व - हमारा भोजन हमें ही खाना और पचाना पड़ेगा, परन्तु भोजन कैसा हो? कैसे खाया जाए? कब खाया जाए? कैसे बनाया जाए? इन बातों की तरफ प्रायः हमारा ध्यान नहीं जाता। भोजन में आज पौष्टिकता पर तो बहुत जोर दिया जाता है, परन्तु भावों की तरफ तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। घर में स्नेही परिवारों द्वारा बनाये गये भोजन में होटलों में मिलने वाले बिना प्रेम के भोजन की अपेक्षा ज्यादा शक्ति होती है। इसी कारण रूखी-सूखी खाने वाला मजदूर, नौकरों द्वारा बनाये गए पौष्टिक आहार लेने वाले अमीरों से ज्यादा शक्तिशाली होता है। आज घर में खाना पसन्द नहीं, अथवा बनाते हुए हमें आलस्य आता है। फलतः बाहर खाने को सभ्यता का सूचक समझने की भूल हो रही है। होटलों में बने भोजन में पदार्थों की कितनी शुद्धता, पवित्रता, स्वच्छता का ख्याल रखा जाता है, यह तो जहाँ भोजन बनता है, वहाँ जाकर देखने से स्पष्ट पता लग जायेगा। उस भोजन बनाने वाले के भाव कैसे हैं हम नहीं जानते।

शरीर में रोगमुक्त होने की क्षमता- जब कभी अंग्रेजी

चिकित्सा पद्धति की उपलब्धियों की चर्चा की जाती है तो शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में प्राप्त सफलताओं का विवेचन करते हुए प्रायः जनसाधारण की जबान नहीं थकती। अनेक साधक भी उसकी आवश्यकता की वकालत करने लग जाते हैं। शल्य चिकित्सा की वाहवाही करते कभी यह नहीं सोचते कि क्या उसका कोई प्रभावशाली विकल्प भी हो सकता है? आज के इस वैज्ञानिक युग में जब रोग की प्रारंभिक अवस्था में सही निदान एवं प्रभावशाली उपचार के बड़े-बड़े दावे किये जाते हैं वहाँ चन्द जन्मजात रोगियों को छोड़कर तथा अकस्मात् दुर्घटनाओं के अतिरिक्त अन्य रोगियों के उपचार के बावजूद रोग शल्य चिकित्सा की स्थिति में क्यों पहुँचता है? क्या हमारे निदान अधूरे, अपूर्ण अथवा गलत होते हैं, जो रोग की प्रारंभिक अवस्था में उसका उपचार ढूँढने में समर्थ नहीं होते। वास्तव में शल्य चिकित्सा अंग्रेजी चिकित्सा के विकास का सूचक नहीं, अपितु उसके दुष्प्रभावों एवं खोखलेपन का सूचक है।

जो शरीर हृदय, फेफड़े, गुर्दे जैसे अंगों का निर्माण स्वयं करता है, रक्त एवं कोशिकाओं जैसी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं करता है, क्या उसमें इतनी क्षमता भी नहीं होती है कि स्वयं को स्वस्थ बना सकें? रोग होने के कारणों को तथा उसके सहयोगी अप्रत्यक्ष रोगों को दूर करने में हम बिना शल्य चिकित्सा पुनः स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए रोग होने की विपरीत प्रक्रिया को अपनाना होगा। यदि शरीर में कहीं गाँठ होती है तो वह बिखर भी सकती है, उसको संकुचित भी किया जा सकता है, उसको घोला भी जा सकता है। इन प्रक्रियाओं में शिवाम्बू-चिकित्सा, पंचगव्य चिकित्सा, ऊर्जा संतुलन चिकित्सा, चुम्बकीय चिकित्सा, सूर्य किरण चिकित्सा, ध्यान एवं एक्युप्रेशर चिकित्सा आदि के सहयोग से जो प्रभावशाली परिणाम सामने आ रहे हैं उनको झुठलाया नहीं जा सकता। स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ शरीर में विजातीय तत्त्वों को निष्कासित कर सन्तुलन बनाने के सिद्धान्त पर कार्य

करती हैं और अवरोध मिटाने में तथा शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वहाँ शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं रहती।

जो आधुनिक चिकित्सा के दुष्प्रभावों को समझता है वही अपनी सुषुप्त मानसिक एवं आत्मिक चेतना को जागृत कर विकल्प का मार्ग चुनता है। स्वावलंबी बनने की इच्छा रखने वाला परावलम्बन को छोड़ता है। अहिंसा में विश्वास रखने वाला हिंसात्मक तरीके नहीं अपना सकता और हिंसा को प्रोत्साहित करने वाली चिकित्सा पद्धतियों का अनुमोदन भी नहीं कर सकता। परन्तु आज रोगी में धैर्य और सहनशीलता की कमी, अज्ञान एवं सम्यक् चिंतन के अभाव के कारण स्वयं की क्षमताओं के प्रति प्रायः हमारा विश्वास नहीं रहा है, जिससे निदान की सत्यता को समझे बिना अपनी असजगता एवं डॉक्टर पर अन्धविश्वास के कारण अपने आपको डॉक्टरों की प्रयोगशाला बनाता व्यक्ति तनिक भी संकोच नहीं करता। रोगी स्वयं कुछ नहीं करना चाहता, इसीलिए शल्य चिकित्सा के दुष्प्रभाव एवं उपचार के अन्य प्रभावशाली विकल्प जनसाधारण को समझ में नहीं आते हैं, परन्तु जो सनातन सत्य है उसको नकारा नहीं जा सकता। पारस को पत्थर कहने से वह पत्थर नहीं हो जाता और पत्थर को पारस कहने मात्र से वह पारस नहीं बन जाता। जो कोई चिकित्सक अथवा वैज्ञानिक पूर्वाग्रह छोड़ अनेकान्त दृष्टि से शारीरिक क्षमताओं का अध्ययन करेंगे उनको इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि 'शरीर में स्वयं रोग मुक्त होने की क्षमता होती है।'

चोरड़िया भवन, जालोरी गेट के बाहर,
जोधपुर-342003 (राज.)
फोन-0291-2621454 (निवास)-9414134606 (मोबाइल)

ॐ

'योग एक जीवन दर्शन

-स्वामी रामदेव

'योग' एक जीवन दर्शन है, योग आत्मानुशासन है, योग एक जीवन पद्धति है, योग व्याधिमुक्त व समाधीयुक्त जीवन की संकल्पना है। योग आत्मोपचार एवं आत्मदर्शन की श्रेष्ठ आध्यात्मिक विद्या है। योग व्यक्तित्व को वामन से विराट बनाने की या समग्र रूप से स्वयं को रूपान्तरित विकसित करता है। योग एकमात्र वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं अपितु योग का प्रयोग परिणामों पर आधारित एक ऐसा उपचार है जो व्याधि को निर्मूल करता है अतः यह एक सत्पूर्ण विधा है जो शरीर रोगों का ही नहीं बल्कि मानस रोगों का भी चिकित्सा शास्त्र है।

योग ऐलोपैथी की तरह कोई लाक्षणिक चिकित्सा नहीं अपितु रोगों के मूल कारण को निर्मूल कर हमें भीतर से स्वस्थता प्रदान करता है। योग को मात्र एक व्यायाम की तरह देखना संकीर्णतापूर्ण, अविवेकी दृष्टिकोण है। स्वार्थ, आग्रह एवं अज्ञान से ऊपर उठकर योग को हमें एक विज्ञान की तरह देखना चाहिए।

योग की पौराणिक मान्यता है कि इससे अष्टचक्र जागृत होते हैं एवं प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से जन्म-जन्मान्तर के संचित अशुभ संस्कार व पाप क्षीण होते हैं।

हमने अष्टचक्रों की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की जब अन्वेषणा की एवं प्राचीन सांस्कृतिक शब्दों का जब अर्वाचीन चिकित्सा विज्ञान के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया तो पाया कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, हृदय, अनाहत, आज्ञा, एवं सहस्त्रार चक्र क्रमशः Reproductory, Excretroy, Digestive, Skeletal, Circulatory, Respiratory, Nervus एवं Endocrine System का है। क्रियात्मक योगाभ्यास के सात प्राणायाम इन्हीं अष्टचक्रों अथवा आठ Systems को सक्रिय एवं संतुलित बनाते हैं।

एक-एक System के असन्तुलन से अनेक प्रकार की व्याधियाँ या विकार उत्पन्न होते हैं। भाषा कुछ भी हो भाव विज्ञान एवं अध्यात्म का एक ही तात्पर्य है भाषा तो मात्र भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है लेकिन चार सौ वर्षों की

गुलामी की आत्मग्लानि के दौर से हम कुछ ऐसे गुजरे कि हमें वात, पित्त व कफ की बजाय Anabolism, Catabolism, Metabolism ठीक से समझ आने लगे।

अपनी परम्परा, संस्कृति के ज्ञान को हम अज्ञानवश आत्मगौरव के रूप में न देखकर आत्मग्लानि से भर गये। 'चक्र' पढ़कर चक्कर में पड़ गये परन्तु System शब्द को पढ़कर हम अपने आपको Systematic कहने लग गये जबकि प्राचीन ज्ञान व आर्वाचीन ज्ञान का तात्पर्य एक ही था।

प्रज्ञापराधो हि सर्वरोगाणां मूलकारणम् (चरक्) के आयुर्वेदोक्त सिद्धान्त के बजाय Stress is the main casuse of all diseases हमें अधिक वैज्ञानिक लगने लगा। अब तो आग्रह एवं अज्ञान छोड़ो एवं सत्य से नाता जोड़ो। उदाहरण के लिए Endocrine System के असन्तुलन से तनाव जनित हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, अवसाद, मोटापा व मधुमेह आदि अनेक जटिल रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह से स्कैलेटल सिस्टम के असंतुलन से शताधिक प्रकार का (सौ से अधिक प्रकार का) तो आर्थराइटिस होता है एवं मांसपेशियों की विकृतियों का व्यक्ति शिकार हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि आन्तरिक सिस्टम में आया किसी भी तरह का असंतुलन ही रोग है जबकि भीतर का संतुलन ही आरोग्य है।

लाखों-करोड़ों लोगों पर योग के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रयोग से हमने ये पाया है कि मुख्यतः आठ प्राणायामों के विधिपूर्वक एक सुनिश्चित समय एवं संकल्पबद्ध अभ्यास से हमारे आठों चक्र या आठों सिस्टम पूरी तरह से संतुलित हो जाते हैं। परिणामतः हम एक निरामय जीवन योग से पाते हैं। साथ ही हम दवा के रूप में जो कैमिकल साल्ट या हार्मोन बाहर से ले रहे थे धीरे-धीरे उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि जो हम बाहर से ले रहे थे वो सारे कैमिकल साल्ट या हार्मोन्स हमें भीतर से ही प्राप्त हो जाते हैं।

योग एलोपैथी की तरह एक पिजन होल ट्रीटमेन्ट (सीमित चिकित्सा) न होकर आरोग्य की एक सम्पूर्ण संकल्पना है। आपातकालीन चिकित्सा व शल्य चिकित्सा को छोड़कर शेष चिकित्सा के सभी क्षेत्रों में योग एक श्रेष्ठतम चिकित्सा

विधा है। योग के साथ कुछ जटिल रोगों में यदि आयुर्वेद का भी संयुक्त प्रयोग होता है तो उपचार का असर अत्यधिक प्रभावी हो जाता है।

उक्त आरोग्य पक्ष के साथ-साथ योग का आध्यात्मिक पक्ष बहुत ही विराट है। यद्यपि योग का मुख्य लक्ष्य समाधि की प्राप्ति या स्वरूप की उपलब्धि या परम सत्य का साक्षात्कार है। साथ ही योग से समाधि की प्राप्ति की इस यात्रा में बीच के अवरोध रोग तो स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं अर्थात् योग से व्याधि की परिसमाप्ति तो योग का बायो प्रोडक्ट है। मुख्य लक्ष्य तो समाधि ही है, यह हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए। योग के बारे में ये विचार मात्र बौद्धिक व्यायाम नहीं, कोई सपना, प्रलोभन या आश्वासन नहीं अपितु योग के प्रयोग का यथार्थ है। मैं आश्वस्त हूँ कि आगे आने वाले समय में विश्व साग्रह योग को आत्मसात् करेगा और योग से एक शान्त, स्वस्थ संवेदनशील व समृद्ध राष्ट्र व विश्व का निर्माण होगा। साइंस एंड स्पिरिच्युएलिटी, भौतिकवाद व अध्यात्मवाद के समन्वय से पूर्ण विकास होगा। योग से आत्मधर्म व राष्ट्रधर्म जगेगा। आत्मकल्याण व विश्व कल्याण के पथ पर विश्व आगे बढ़ेगा। जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, मार्क्सवाद, माओवाद व मनुवाद आदि वादों के विवाद से निकलकर व्यक्ति राष्ट्रवाद व मानवतावाद को स्वीकार करेगा और भारत विश्व की सर्वोच्च सांस्कृतिक, अध्यात्मिक, आर्थिक व सामाजिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित होगा। अशान्ति में भय, घृणा, तृष्णा, असंतोष, अविवेक, क्रोध, असंयम एवं समस्त वासनात्मक भाव उत्पन्न होते हैं। प्राणायाम एवं ध्यान से जब व्यक्ति का मन शांत हो जायेगा तो समाज, राष्ट्र व विश्व में व्याप्त भय, भ्रम, हिंसा, अपराध व भ्रष्टाचार भी मिट जायेगा और उपासना की वृत्ति से वासना की प्रवृत्ति पर भी नियन्त्रण लगेगा। भोगवादी विद्रूपताओं से मुक्ति का एकमात्र समाधान यही भोगवादी, दृष्टिकोण है। हिंसा, अपराध व कामोन्मत्तता के वैश्वीकरण के विकराल काल का अन्त योग की वैश्विक प्रतिष्ठापना से ही सम्भव है, अन्यथा महाविनाश से कोई बचा नहीं सकता।

मानसिक अवसाद - डिप्रेशन की यज्ञ चिकित्सा

-वैद्य (डॉ.) कुलदीप सिंह सोहल

यज्ञोपचार करते समय हवन सामग्री नं. 1 व नं. 2 समान मात्रा में अलग पात्र में निकाल कर मिश्रित कर लें। इनका 10 वाँ भाग शर्करा एवं 10वाँ भाग घृत मिला लेना चाहिए। इसी सामग्री से कम से कम चौबीस बार मन्त्र पढ़ते हुए हवन करना चाहिए। सूर्योदय के समय किया गया हवन सर्वाधिक लाभकारी होता है। आवश्यकता अनुसार दिन में भी 3 बार व रात में 2 बार किसी पात्र में अग्नि रखकर थोड़ी-सी हवनीय औषधीय सामग्री डालकर रोगी के निकट धूप की भांति जलाई जा सकती है।

हवन के पश्चात् समीप रखे जलपात्र में दूर्वा, कुश अथवा पुष्प डुबोकर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए रोगी पर अभिसिंचन करना चाहिए साथ ही यज्ञ की भस्म व घी के पात्र से कुछ घी की बूँदों को क्रमशः मस्तक, हृदय, कंठ, पेट, नाभि एवं दोनों भुजाओं पर लगाना चाहिए। इनका प्रभाव शारीरिक व मानसिक क्षेत्रों पर पड़ता है।

महाशक्ति गायत्री की सतोगुणी शक्ति को सरस्वती कहते हैं। मानसिक जड़ता मिटाने एवं निर्मल बुद्धि प्रदान करने में विद्या की अधिष्ठात्री इसी महाशक्ति का हाथ है। मस्तिष्क की क्षमताओं में अभिवृद्धि, बौद्धिक विकास, प्रतिभा प्रखरता, स्मरणशक्ति की अभिशक्ति में तथा असफलता, निराशा, चिंता और खिन्नता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करके सफलता का आशाजनक वातावरण उत्पन्न करने की स्थिति बनाने में सरस्वती शक्ति का विशेष महत्त्व है। सरस्वती गायत्री मंत्र द्वारा विशिष्ट प्रकार की

औषधीय सामग्री से हवन करने पर मनोवांछित दिशा में सफलता मिलती है।

हवन सामग्री नं.1 अगर, तगर, देवदार, चन्दन, लाल चन्दन, जायफल, लौंग, गूगल, चिरायता, गिलोय, असगन्ध। इन सबको बराबर कूट पीसकर दरदरा चूर्ण बना लें। इसको डिब्बे में बन्द कर 1 नम्बर का लेबल लगा लें।

दबाव-अवसाद डिप्रेशन आदि मानसिक रोगों की विशेष हवन सामग्री नं. 2 - अकरकरा, मालकंगनी, तिमूर, घुड, बच, मीठी बच, जटामांसी, गिलोय, तेजपत्र, नागरमोथा, जौ, सुगन्ध कोकिला, तिल, चावल, खांडसारी गुड़, घी। इन औषधियों का बारीक पिसा हुआ चूर्ण रोगी को सुबह शाम एक-एक चम्मच जल या दूध से नित्य देते रहें तथा हवन सामग्री में भी इसे प्रयोग करें।

नोट : यदि किसी महानुभाव को इस प्रकार की विशेष औषधीय सामग्री तैयार करने में कठिनाई हो तो वे लेखक से सम्पर्क करके सामग्री उपलब्ध करवाने हेतु मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

112, अर्जुन नगर, सफदरजंग इन्कलेव
नई दिल्ली-110029

अंतरिक्ष में उपनिषद् और गीता

भारतीय मूल की सुनीता विलियमस अंतरिक्ष में अपने साथ उपनिषद और गीता का अंग्रेजी अनुवाद लेकर गईं। सुनीता के पिता श्री दीपक पाण्ड्या का मानना है कि संभवतः सुनीता विलियमस को उपनिषदों के ज्ञान को अन्तरिक्ष में नए सिरे से जानने का सुअवसर मिला होगा। हमारी शुभकामनाएँ।

The Thinker And The Thought

-J Krishnamurti

In all our experiences, there is always the experiencer, the observer, who is gathering to himself more and more or denying himself. Is that not a wrong process? We can wipe it out completely and put it aside only when I experience, not as a thinker experiences, but when I am aware of the false process and see the state in which the thinker is the thought.

So long as I am experiencing, becoming, there must be this dualistic action, the thinker and the thought, two separate processes at work: there is no integration, there is always a centre which is operating through the will of action to be or not to be - collectively, individually, nationally and so on. So long as effort is divided into the experiencer and the experience, there must be deterioration. Integration is when the thinker is no longer the observer and there are no two different states. Our effort is to bridge the two. The will of action is always dualistic. How to go beyond this will which is separative and discover a state in which is separative and discover a state in which dualistic action is not? That can only be found when we directly experience when the thinker is the thought. We now think thought is separate from the thinker but is that so? We would like to think it is, because then the thinker can explain matters through his thought. The effort of the thinker is to become more or become less; and therefore, in that struggle, in the action of the will, in 'becoming', there is always the deteriorating factor; we are pursuing a false process and not a true process.

I am greedy. If I aim aware that I am greedy, what hap-

pens? I make an effort not to be greedy, either for sociological reasons or for religious reasons; that effort will always be in a limited circle; I may extend the circle but it is always limited; the deteriorating factor is there. But when I look a little more deeply and closely, I see that the maker of effort is the cause of greed and he is greed itself; and I also see that there is no 'me' and greed, existing separately, but that there is only greed.

If I realise that I am greedy, that there is not the observer who is greedy but I am myself greed, then our whole response to it is entirely different; then our effort is not destructive.

Unfortunately, we don't think along those lines. There is the 'me', the superior entity, the soldier who is controlling, dominating; that is destructive. It is an illusion and we know why we do it. I divide myself into the high and the low in order to continue. If there is only greed, completely, not 'I' operating greed, what happens? When there is no sense of 'I' dominating, becoming, positively or negatively, we would be creative, then there is no maker of effort.

It is not a matter of verbalising or of trying to find out what that state is; see that the maker of effort and the object towards which he is making effort are the some. That requires great understanding, watchfulness, to see how the mind divides itself into the high and low-the high being security, the permanent entity-but still remaining a process of thought and therefore of time. If we can understand this as direct experience, then you will see that quite a different factor comes into being.

बिकने लगे हैं सांसद

-आचार्य रामसुफल शास्त्री

बिक गई है धरती, गगन बिक न जाये।
बिक रहा है पानी, पवन बिक न जाये।।
चाँद पर भी बिकने, लगी है जमीं अब।
डर है कि सूरज की, तपन बिक न जाये।।

खरीदा गया है देकर, दहेज जब दूल्हे को।
कहीं उसके हाथों ही, दुल्हन बिक न जाये।।
हर काम के लिए रिश्वत, ले रहे हैं नेता।
कहीं इन्हीं के हाथों, वतन बिक न जाये।।

सरेआम अब तो बिकने लगे है सांसद।
डर है कि कहीं संसद ही बिक न जाये।।
आदमी मरा तो भी, आँखें खुली हुई हैं।
डरता है मुर्दा, कहीं कफन भी बिक न जाये।।

वह नारी धन्य हैं

-स्ना. प्रभावती देवी

जिसने तीर्थंकर हमें दिये
जिसने योगेश्वर हमें दिये
जिसने पैगम्बर हमें दिये
जिसने हरिशंकर हमें दिये
जिसने गाँधी और दयानन्द
युग-निर्माता नर हमें दिये
नवयुग जिनका आभारी है।
वह नारी है वह नारी है।।

RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2011-2013

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन् मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि।।

ऋषि- कुत्स आंगिरसः, देवता-इन्द्रः (ऋग् 1/7/19/3)

अर्थ- हे परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर 'मा नो वधीं' हमारा वध मत कर यानी हमें अपने से अलग मतकर, 'मा परादा' हमसे आप कभी परे न हों। 'मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः' हमारे प्रिय भोगों को हमसे दूर मत कर। 'आण्डा मा नो निर्भेत्' हमारे गर्भों को नष्ट मत कर। हे मघवन् सर्व शक्तिमान् 'शुक्र' समर्थ इन्द्र हमारे पुत्रों को हानि मत पहुँचा। 'मा नः पात्राः' हमसे हमारे कीमती स्वर्ण पात्रों को अलग मत कर 'सहजानुषाणि' हमारे जो सहज प्रिय मित्र हैं उनको हानि न पहुँचे। इस प्रकार हमारे पूर्वोक्त सभी पदार्थों की रक्षा कीजिए।

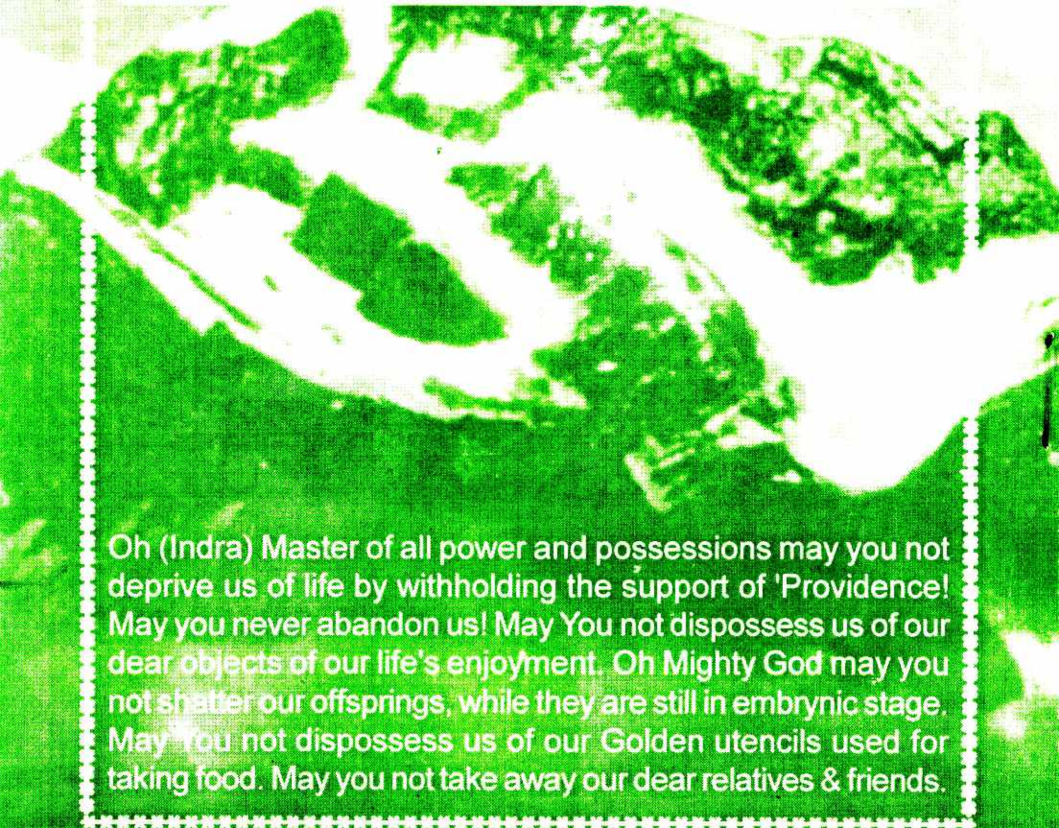

Oh (Indra) Master of all power and possessions may you not deprive us of life by withholding the support of 'Providence! May you never abandon us! May You not dispossess us of our dear objects of our life's enjoyment. Oh Mighty God may you not shatter our offsprings, while they are still in embrynic stage. May You not dispossess us of our Golden utencils used for taking food. May you not take away our dear relatives & friends.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58